

कीन्स की व्याख्या

कीन्स की व्याख्या
 कीन्स ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'जनरल थोरी' में आय की व्याख्या उपर्याप्त सम्बन्ध में की तथा इसमें विनियोग को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसके पूर्व कीन्स ने जो विचार "A Theory
on Money" नामक पुस्तक में व्यक्त किए थे, वे 'General Theory' में पूर्णस्पष्ट सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए कीन्स ने निम्न समीकरण प्रस्तुत किया :

$$Y = C + S$$

अथवा

$$I = Y_{\infty}$$

$$Y = C + I$$

$$S = Y - \alpha$$

$$\text{अतः } C + S = C + I$$

S II

उपर्युक्त समीकरण में—

$Y = \text{कुल आय}$

S = बचत (Saving)

C = उपभोग (C₀)

विनियोग

कीन्स-समीकरण में आय का अर्थ

आय का अर्थ मौद्रिक आय और वास्तविक आय दोनों से है। उत्पत्ति के साधनों को मज़बूत ब्याज तथा लाभ के रूप में प्राप्त होने वाली आय को समाज की मौद्रिक आय कहा जाता है। वास्तविक के अन्तर्गत देश में पैदा होने वाली सम्पूर्ण उपभोग सम्बन्धी तथा पूँजीगत वस्तुएं शामिल रहती हैं।

बचत आय का वह भाग है जिसे उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता। यदि लोग अपनी आय का भाग बचाते हैं तो वस्तुओं पर कम व्यय किया जायगा और यदि कम बचत की जाती है तो ज्यों होगा। अधिक बचत से वस्तुओं की मांग गिर जाती है तथा इनका मूल्य कम होने लगता है जैसे देशाएं पैदा हो जाती हैं।

बचत का या तो विनियोग किया जा सकता है या उसे संचय किया जा सकता है। विनियोग में मुद्रा का नई पूँजीगत वस्तुओं के खरीदने पर व्यय किए जाने से है। वर्तमान पूँजीगत वस्तुओं पर किए जाने व्यय को विनियोग नहीं कहा जा सकता। अधिक निवेश से व्यय की जाने वाली मात्रा बढ़ती है जिसके लिए की मांग बढ़ती है और उनके मूल्य बढ़ने लगते हैं।

बचत और विनियोग में सन्तुलन

कीन्स के अनुसार सन्तुलन की स्थिति में बचत और विनियोग दोनों में समानता रहनी चाही इनमें असमानता है तो असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जायगी। यदि बचत, विनियोग की अपेक्षा ज्यादा वस्तुओं की मांग कम हो जाती है जिससे मूल्य गिरने लगते हैं और मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है विपरीत, यदि बचत की तुलना में विनियोग अधिक है तो वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने लगती है का मूल्य कम होने लगता है। सन्तुलन की स्थिति वह है जिसमें बचत और विनियोग एक-दूसरे के रहते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए हम यहां पुनः कीन्स समीकरण का प्रयोग करेंगे :

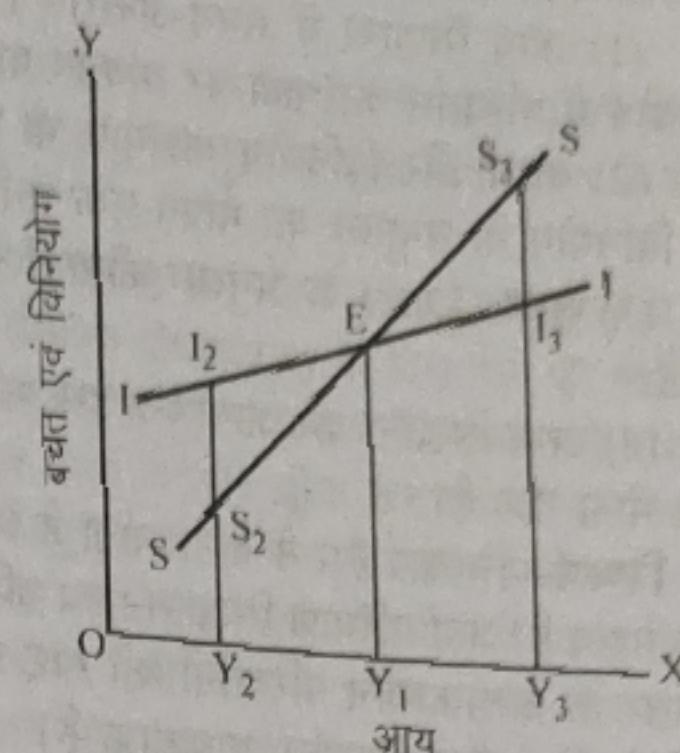
$$Y = C + I$$

$$Y = C + S$$

$$I = S$$

समाज को जो आय प्राप्त होती है, उसमें दो प्रकार की आयों का समावेश होता है—वस्तुओं के उत्पादन से प्राप्त आय तथा विनियोग की वस्तुओं के उत्पादन से प्राप्त आय। अतः इस अ
$$Y = C + I$$
। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार जो आय प्राप्त होती है, उसे या तो उपभोग पर व्य
$$S = C + S$$
। इन दोनों समीकरणों के आधार पर सकता है या उसे वचाया जा सकता है अर्थात् $I = S$ ।

उपरोक्त विदेशन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बचत और विनियोग में असन्तुलन होने से कीमतों में उच्चावचन होता है। यदि $S = I$ है तो कीमतों में स्थिरता होती है। यदि बचत की तुलना में विनियोग अधिक है तो बचत अधिक है तो कीमतों में कमी होगी। इस प्रकार जब कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन से।



चित्र ।

आय सिद्धान्त के गुण अथवा श्रेष्ठता (Merits of Income Theory)

मुद्रा का आय सिद्धान्त, मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की तुलना में श्रेष्ठ है जिसके निम्न कारण हैं:

(1) आधिक नीतियों का पथ-प्रदर्शन—इस सिद्धान्त के पूर्व, मुद्रा की मात्रा में होने वाली वृद्धि को मुद्रा ज्ञान का कारण माना जाता था किन्तु आय सिद्धान्त ने इस भ्रम को दूर कर यह स्पष्ट कर दिया है कि मुद्रा ज्ञान मत्रा बढ़ने से मुद्रा प्रसार की स्थिति पूर्ण रोजगार के बिन्दु के बाद ही पैदा होती है।

(2) व्यापार चक्र का सही विश्लेषण—आय सिद्धान्त इस बात का विश्वसनीय जवाब देता है कि मुद्रा शंखात्रा को कम करने से समृद्धि काल में मूल्य स्तर को कैसे बढ़ने से गोका जा सकता है तथा मन्दी की विधि में मुद्रा की मात्रा बढ़ाने से मूल्य-स्तर में वृद्धि क्यों नहीं होती। क्राउथर के अनुसार, “यह सिद्धान्त इस विक्री तत्व को समझाता है कि जब अति अवसाद काल में मुद्रा का सृजन किया जाता है, उसका कभी-कभी विनियोग की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जब वचत की तुलना में विनियोग की मात्रा बढ़ जाती है तो विशेष प्रभाव क्यों कार्यशील हो जाते हैं।”¹

(3) मुद्रा के चलन-वेग का स्पष्टीकरण—आय सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि मुद्रा के चलन-वेग पर व्यापार-चक्रों का प्रभाव पड़ता है। जब विनियोग की तुलना में बचत की मात्रा अधिक हो जाती है तो व्यय की मात्रा घट जाती है और मुद्रा का चलन वेग कम हो जाता है। इसके विपरीत, जब बचत की तुलना में विनियोग की मात्रा बढ़ जाती है तो मुद्रा का चलन वेग बढ़ जाता है।

(4) मौद्रिक और सामान्य सिद्धान्त का एकीकरण—मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का यह दोष था कि उसने मौद्रिक सिद्धान्त को सामान्य आर्थिक सिद्धान्त से पृथक् कर दिया था। किन्तु कीन्स के सिद्धान्त में यह दोष नहीं है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मौद्रिक सिद्धान्त सामान्य आर्थिक सिद्धान्त का ही एक भाग है।

(5) वात्तविक पान्यताओं पर आधारित—आय सिद्धान्त, मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की पूर्ण रोजगार शैली, ज्ञात्वात्विक पान्यताओं पर आधारित न होकर, यथार्थ मान्यताओं पर आधारित है, अतः यह अधिक वापरिक एवं व्यावहारिक है।

¹ "This explains the puzzling phenomenon that when money is created at the bottom of a depression, it sometimes has no effect on the volume of investment when investment exceeds savings the contrary influences come into play." —Crowther

मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का पुनः प्रतिपादन एवं सिद्धान्त का उत्तरोत्तर विकास

[MILTON FRIEDMAN'S REFORMULATION OF QUANTITY THEORY OF MONEY AND IT'S FURTHER DEVELOPMENT]

(गुर्ले-शा, टॉबिन, बॉमोल तथा डॉन पैटिंकिन का दृष्टिकोण)

(VIEWS OF GURLEY—SHAW, TOBIN, BAUMOL AND DON PATINKIN)

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की आलोचनाओं ने विशेष रूप से 1929 की आर्थिक मन्दी के बाद उसे महत्वहीन घोषित किया तथा आलोचकों ने यह मत व्यक्त किया कि मुद्रा के परिमाण एवं मूल्य स्तर में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। 1936 में लॉर्ड कीन्स की महत्वपूर्ण पुस्तक 'जनरल थौरी' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लॉर्ड कीन्स ने मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की आलोचना की और यह मत व्यक्त किया कि मुद्रा की पूर्ति, उत्पादन तथा मूल्य स्तर में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। कीन्स के मतानुसार मुद्रा का मूल्य मुद्रा की मांग पर निर्भर करता है और मुद्रा की मांग मुद्रा की तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) पर निर्भर करती है। वास्तव में, कीन्स के विचारों के फलस्वरूप मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की परम्परागत धारणा ही अमान्य हो गयी। किन्तु 1956 में शिकागो के अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का नये सिरे से प्रतिपादन किया। उन्होंने मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के मूलाधार को स्वीकार किया तथा इसका स्पष्टीकरण अपने एक लेख¹ में किया जो 1959 में प्रकाशित हुआ। फ्रीडमैन ने मुद्रा परिमाण के जिस नये रूप का प्रतिपादन किया, वह वास्तव में मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है जो यह स्पष्ट करता है कि मुद्रा का मूल्य उसकी मांग से प्रभावित होता है। उन्होंने मुद्रा की मात्रा का सम्बन्ध मूल्य स्तर तथा राष्ट्रीय आय से करके फिशर के सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया है।

मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण सिद्धान्त

(MILTON FRIEDMAN'S QUANTITY THEORY OF MONEY)

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के शिकागो रूपान्तर की प्रथम विवेचना प्रो. मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा प्रस्तुत की गई। उन्होंने अपने 1956 में प्रकाशित *The Quantity Theory of Money—A Restatement* शीर्षक के साथ में मुद्रा के आधुनिक परिमाण सिद्धान्त का एक मॉडल प्रस्तुत किया। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के पुनः व्यवस्थापन में फ्रीडमैन ने लक्ष्य किया कि उसका परिमाण सिद्धान्त मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है। अर्थात् मुद्रा का मूल्य उसकी मांग से प्रभावित होता है। वह उत्पादन, मुद्रा, आय अथवा कीमतों का सिद्धान्त नहीं है।

फ्रीडमैन के अनुसार, जिस तरह किसी वस्तु की मांग उसकी उपयोगिता, उससे प्रदत्त सेवाओं और उसकी लागत पर निर्भर करती है, उसी प्रकार, मुद्रा की मांग भी इन्हीं कारणों पर निर्भर करती है। इस तरह, फ्रीडमैन मुद्रा को एक उपभोग वस्तु के रूप में मानते हैं और उसकी मांग के वास्तविक स्तर पर न कि वैदिक स्तर पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

¹ Milton Friedman, "The Demand for Money, Some Theoretical and Empirical Results", *Journal of Political Economy*, Vol. 77, Aug. 1959, pp. 327-57.

फ्रीडमैन के सिद्धान्त के दस तत्व

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. पी. आर. ब्रह्मानन्द ने मिल्टन फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त को दस तत्वों में वर्णन किया है जो निम्नलिखित हैं :

(i) **मुद्रा की मात्रा**—किसी अर्थतन्त्र में मुद्रा की मात्रा दो तत्वों द्वारा निर्धारित होती है।

(अ) जनता के पास मुद्रा की सक्रिय मात्रा तथा व्यापारिक वैंकों के विदेशी विनियम कोण।

(ब) मुद्रा की गति—फ्रीडमैन इसे गुणक के नाम से पुकारते हैं।

फ्रीडमैन की मान्यता है कि जब वैंकों के पास जमा नकद गशि में वृद्धि होती है तो मुद्रा की गति में वृद्धि होती है। इसी प्रकार सरकारी बजट में घाटे की पूर्ति होने से तथा वैंकों के विदेशी विनियम कोण में वृद्धि होने से भी मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है।

(ii) **आय**—राष्ट्रीय आय में वृद्धि मुद्रा की मात्रा को प्रभावित करती है।

(iii) **आय-गति**—जब व्याज की दर, साधारण अंशों पर लाभांश तथा मूल्य स्तर में वृद्धि होती है। मौद्रिक आय भी तेजी से बढ़ती है अर्थात् मुद्रा की कुल मात्रा में वृद्धि होती है।

(iv) **मुद्रा और उपभोग**—फ्रीडमैन के अनुसार यदि व्याज की दरें, लाभ की दरें तथा मूल्य स्तर रहते हैं तो अल्पकाल में मौद्रिक आय (अथवा मुद्रा की पूर्ति) में भी स्थायी रहने की प्रवृत्ति होती है।

(v) **मुद्रा, रोजगार और मजदूरी**—जब मूल्य तथा मजदूरी की दरें स्थिर रहती हैं और उत्पादन वेरोजगारी अधिक होती है तब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने से मौद्रिक तथा वास्तविक दोनों प्रकार आय में वृद्धि होती है।

(vi) **मुद्रा की मात्रा तथा प्रभावी मांग का सम्बन्ध**—फ्रीडमैन की मान्यता है कि मुद्रा की मात्रा तथा मांग में विभिन्न तत्वों के माध्यम से सम्बन्ध जुड़ा रहता है जो निम्नलिखित हैं :

(क) अंशों, ऋणपत्रों, भूमि तथा मकान, आदि सम्पत्तियों की खरीद द्वारा,

(ख) पूंजीगत सम्पत्ति की खरीद द्वारा।

(ग) उपभोक्ता भाल की खरीद द्वारा।

प्रारम्भिक स्थिति में जब उत्पादन क्षमता अत्यधिक होती है और वेरोजगारी की स्थिति होती है, मुद्रा तथा मात्रा में वृद्धि से वास्तविक उत्पत्ति में वृद्धि होती है।

(vii) **मुद्रा पूर्ति में निश्चित दर पर वृद्धि**—मुद्रा की मात्रा तथा उत्पादन और वास्तविक उत्पादन तथा मूल्य-स्तर एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं किन्तु एक-दूसरे पर प्रभाव अनिश्चित काल में होता है। वृद्धि इह होता है। अतः फ्रीडमैन के अनुसार मुद्रा की मात्रा में वृद्धि एक निश्चित दर पर की जानी चाहिए। वृद्धि इह दर अलग-अलग अवधियों में अलग-अलग हो सकती है किन्तु उसकी मात्रा पहले से निश्चित करना असंभव युक्तिसंगत है।

(viii) **मुद्रा की मांग और मूल्य-स्तर**—यदि मूल्यों में वृद्धि होती है तो जनता अपने पास जटिक तथा विकास की दर पर रखना चाहती है।

(ix) **मुद्रा-स्फीति और व्याज**—जब दीर्घकाल तक मुद्रा-स्फीति बनी रहती है तब व्याज की सीढ़िक तो ऊँची रहती है, किन्तु वास्तविक दर कम रहती है। मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन द्वारा स्थायी वास्तविक को प्रभावित नहीं किया जा सकता।

(x) **मुद्रा और आर्थिक विकास**—फ्रीडमैन की मान्यता है कि दीर्घकाल में वास्तविक उत्पादन तथा विकास की दर को मौद्रिक तत्वों द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता।

सासंश—मिल्टन फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त को संक्षेप में निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

(i) **मुद्रा परिमाण सिद्धान्त** मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है अर्थात् मुद्रा का मूल्य उसकी मांग से प्रभावित होता है।

(ii) **मुद्रा की मांग आर्थिक प्रणाली के विभिन्न तत्वों से प्रभावित होती है।** इन तत्वों में व्याज की आय, सम्पत्ति तथा मूल्यों में उत्तर-चढ़ाव सम्मिलित हैं। इसका अर्थ यह है कि मुद्रा की मांग आर्थिक

आय, व्याज की दर और मूल्य के अनुसार घटती-बढ़ती है। फ्रीडमैन ने आय का अर्थ स्थायी अप्राप्ति से लिया है जिसका सम्बन्ध धन से प्राप्त होने वाली उस आय से है जो दीर्घकाल में प्राप्त होती है।